

आदिवासी नीति

Towards National Tribal policy

प्रथम सत्र— हम आदिवासियों से क्या सीख सकते हैं?

द्वितीय सत्र— आदिवासी नीतियां

तिथि – 11 जनवरी 2013

11 तारीख को नारायण दत्त तिवारी भवन, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग में आदिवासियों की नीति के संबंध में बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में आदिवासियों की वर्तमान स्थितियों के बारे में जानकारी देने के अलावा, हम आदिवासियों से क्या सीख सकते हैं आदि पर भी मौजूद सदस्यों ने विचारों का आदान-प्रदान किया। अंतिम सत्र में सरकार द्वारा आदिवासियों की स्थिति एवं उनके संबंध में बनी नीतियों एवं कानूनों के बारे में भी विचार हुआ। वक्ताओं ने अपने-अपने विचार रखे जो इस प्रकार से हैं :

- **विजय प्रताप**— मैं अवैतनिक रूप से सेडेड से जुड़ा हूँ। मेरे प्रारंभिक परिवार में गांधीवादी सोच थी। लेकिन मैं आगे चलकर नेहरू-गांधीवादी सोच की विरोधी धारा के साथ अर्थात् लोहियावादी धारा के साथ रहा। मुझे लगता है कि आज विचारों का लोकतांत्रिकीकरण हुआ है और लैनिनवादी सोच वालों में भी लोकतांत्रिकीकरण की सोच बढ़ी है। समाजवाद को छोड़कर जो दलितवाद में होगा दलितों का वोट भी वही पाएगा। ये जो चीज पैदा हुई है इसमें मुझे लगता है कि समाजवादी आंदोलन का फेल होना इसका एक कारण है। अभी कोई भी पार्टी इस तरह की समझ के आधार पर काम नहीं कर रही है। इसी तरह अभी हाल में एक 23 वर्षीय लड़की के साथ हुए सामूहिक बलात्कार के विरोध में युवा वर्ग मिलकर आंदोलित हुए लेकिन मुझे शक है कि हमारे उम्र की महिलाएं आंदोलित हैं भी या नहीं मुझे लगता है कि हमें नए सृजन की जरूरत है।

यहां अस्मिता के ऐसे कोने भी हैं जहां दलित और पिछड़े ही नहीं मुस्लिम-हिन्दू पहचान, कट्टरवाद आदि बढ़ रहा है और उसका मुकाबला करने के लिए कुछ भी सशक्त नहीं हो पा रहा है। हमारी आज की कार्यशाला शोध संस्थान-सी.एस.डी.एस. के तत्वाधान में है। इसका उद्देश्य कार्यकर्ता बनाना नहीं है बल्कि उसके उद्देश्य का अध्ययन करना है। जिस तरह से पार्टी और आंदोलन के लोग, समाजिक कार्यकर्ता आदि अपने-अपने संस्थान के माध्यम से आदिवासी और उनके लिए बनी नीयितों को समझने में असमर्थ महसूस कर रहे हैं ऐसे में हमें उम्मीद है कि यदि इस मंच के माध्यम से उनके बीच साझी समझ बन पाए तो अच्छा होगा।

सेडेड स्वेच्छा (वोलेंटरी) से भी कुछ-कुछ कामों में शामिल होता है। आदिवासी नीति के संबंध में बैठक करने का सुझाव बी.के. मनीष जी की ओर से आया। हम जानते हैं कि हमेशा ही सामाजिक आन्दोलनों में आदिवासियों के लिए नीति बनाने की बात की जाती रही है और इस संबंध में राज्य की अपेक्षा केन्द्र के पास अधिक अधिकार केन्द्र हैं इसीलिए आदिवासियों के लिए पांचवी अनुसूची की बात की गई है। भारतीय राज्य वैश्विक पूंजी के एजेंट के लिए ज्यादा काम कर रहा है। कांग्रेस, भारत में बॉयो टेक्नोलॉजी को लाने के पक्ष में है, उनके लिए बॉयो टेक्नोलॉजी अर्थात् 'मोनसेन्टो'। आज की बैठक गैर आदिवासी और आदिवासी समाज दोनों की ही है। आज भी आदिवासी समाज और आदिवासियों के लिए काम करने वालों को कई बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। जैसे मैं आपको एक उदाहरण देता हूं, हमारे एक साथी हैं मैं उनका नाम नहीं लेना चाहता हूं लेकिन वो 8-10 साल से आदिवासियों के साथ काम कर रहे हैं लेकिन फिर कुछ ऐसी परिस्थितियां बनीं कि उन्हें आदिवासी समाज से अलग दिल्ली आकर रहना पड़ा उन्होंने इस समाज को समझने की बड़ी कोशिश की लेकिन वो खुद को इस समाज के साथ रहने में असहज एवं असमर्थ सा महसूस करने लगे और उन्होंने शराब पीनी शुरू कर दी।

हम लोगों में आदिवासी समाज के प्रति और खासकर हिमालय के प्रति बहुत अज्ञानता है। और आदिवासियों या उनके साथ रहने वालों को हमारे समाज को समझने के लिए एक बड़ी लड़ाई की जरूरत है क्योंकि जिस समाज में निजी संपदा का ख्याल तक भी नहीं था

उसे आपने पट्टा दे दिया और लोग मानते हैं कि उसने अपना रास्ता दूसरी दिशा में खोल दिया तो आखिर मुश्किलें तो बढ़ेगी ही।

हमें अपनी सामाजिक पूंजी को आदिवासियों के लिए खर्च करने की जरूरत है। आदिवासियों के पास स्वास्थ्य, कृषि, वन संपदा आदि अनेक विषयों पर ऐसा बहुत सा ज्ञान है जो हमारे आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के पास भी मौजूद नहीं है जैसे पिछले दिनों सूनामी आने पर आदिवासियों को बहुत पहले से ही उसके बारे में जानकारी हो गई थी जो कि हमारी आधुनिक तकनीक को भी पता नहीं चल पाई थी। हम चाहते हैं कि उनके ज्ञान का प्रयोग किया जाए ताकि इतना अमूल्य ज्ञान यूं ही बेकार न हो जाए। लेकिन इस प्रक्रिया में ऐसा न हो कि उनकी वन संपदा एवं उनके ज्ञान का प्रयोग कर उन्हें लूटकर ही छोड़ दिया जाए। जैसे हिमालयन ड्रग्स एंड फॉरमेस्यूटिकल कंपनी ने आदिवासी इलाकों में मौजूद जड़ी-बूटियों का प्रयोग किया और उनको बड़ी-बड़ी कंपनियों से बड़े पैमाने पर पैसा लेकर बेच दिया। हम चाहते हैं कि आदिवासी हमें जो भी पारिस्थितिकीय सेवायें देते हैं उनके बदले उन्हें आज की दरों के हिसाब से उन्हें उसका हर्जाना दिया जाए। उनको लूटा न जाए। मुझे लगता है कि जड़ी-बूटियों से बने दवाओं का नियंत्रण समाज में हो या फिर सहकारी रूप से हो ताकि उन्हें समाज के लाभ के लिए प्रयोग किया जाए ताकि अच्छे हर्जाने द्वारा आदिवासियों का भी भला हो और अच्छी दवाइयों की उपलब्धता के कारण आम जन का भी।

सुभ्रांषु चौधरी ने आदिवासियों पर लिखी अपनी एक किताब में कहा कि यदि आप आदिवासियों के लिए काम करना चाहते हैं तो सबसे पहले आपको आदिवासियत को समझना होगा। आज की बैठक का अर्थ ये नहीं कि हमने भिन्न मतों वाले लोगों के बीच में एक सहमति बनानी है बल्कि ये कि हम सभी अपनी बात को खुलकर कह सकें फिर चाहे वो कुछ भी हो।

अशोक सिंह – राजेश उपाध्याय ने आदिवासी विषय पर काफी समझ बनाई है और इन्हें लगता है कि हम आदिवासी समाज से बहुत कुछ सीख सकते हैं और हमें, इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि हम उन्हें अपने साथ लेकर कैसे चलें।

राजेश उपाध्याय – आदिवासी समाज से हम क्या सीख सकते हैं ? इसका अर्थ है कि हमारी सोच और विचार में कुछ ऐसी चीज है कि आदिवासियों के पास ऐसा कुछ है जो हम उनसे सीख सकते हैं और उससे हमारा समाज प्रभावित और सुंदर हो सकता है। ये सोचने की बात है कि आदिवासी समाज से हमारे पूरे देश की नीतियां, सोच आदि कैसे बदल सकती है। हमारे दिमाग में हमेशा ही यह विचार आता है कि हमें प्रकृति और आदिवासी समाज के बीच कायम रिश्ते को सीखने की जरूरत है। लेकिन हमारे आधुनिक युग की विडंबना रही है कि वो विकास के नाम पर प्रकृति पर विजय कायम करना चाहता है वो उसे नष्ट करना, उसका शोषण करना चाहता है।

हमें प्रकृति पर विजय पाने के स्थान पर प्रकृति के साथ एकसमानता कायम करने के बारे में सोचना चाहिए। हमें ये समझना चाहिए कि मानव समाज और प्रकृति दो अलग-अलग पहचान नहीं है बल्कि वो एक-दूसरे का हिस्सा है। हमारी औद्योगिक कृषि एवं वाणिज्य की नीतियों को इसी परिप्रेक्ष्य में होने की आवश्यकता है।

मैं राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, झारखंड, उड़ीसा के कई आदिवासी गांवों में आदिवासियों के बीच में रहा और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। तो यदि हम आदिवासी समाज से सीखने की बात करें तो सबसे पहले मेरे मन में आता है कि हम 'ऊर्जा' के बारे में उनसे कुछ सीखें। हमें ये देखकर हैरानी हुई कि आदिवासी लोग संचय करने एवं आने वाले कल के बारे में बिल्कुल भी नहीं सोचते। हमारा आदिवासी समाज किसी भी वस्तु का प्रयोग केवल अपनी जरूरत के अनुसार ही करता है उससे अधिक नहीं। वो बाजार और उपभोगवाद की अपेक्षा अपने लिए जीते हैं। लेकिन मनुष्य उपभोगवाद का पक्षधर है वो केवल अपने बारे में सोचता है और अधिक से अधिक उपभोग करना चाहता है। लेकिन यदि हम उनसे सीखना

चाहते हैं तो हमें मौजूदा बाजारवाद और उपभोक्तावाद के ढांचे से परे एक अलग रास्ता चुनना होगा।

आदिवासी समाज में औरतों की स्थिति हमसे बेहतर है। जबकि हम आधुनिक समाज में बाजारवाद और पितृसत्ता का घोलमोल पैदा करते हैं जिससे हमें नुकसान होता है। जिसे आदिवासी समाज से सीखना होगा। इस बारे में हमारे समाज में कई कमियां मौजूद हैं जिन्हें हमें उनसे सीखने की जरूरत है। यदि हम उनकी भाषा, गीत, संगीत को सीख न पाएं तो कुछ नहीं हो पाएगा इसलिए सबसे पहले उनसे वो सीखना होगा। यदि हम आदिवासी भाषा और लिपि के बारे में नकारात्मक रवैया रखें तो कुछ नहीं हो पाएगा। आदिवासी समाज में अपना ही देवता और अपना ही एक वृक्ष होता है और वो उसकी पूजा करते हैं। कहीं-कहीं पर तो हर गांव का अपना एक अलग देवता होता है लेकिन फिर भी उनके समाज में इस आधार पर झगड़ा नहीं होता।

आदिवासी समाज किसी के दबाव में नहीं जीता एवं उसके रहन-सहन एवं खाने-पीने का तरीका खुद का अपना ही होता है जबकि हमारे आधुनिक समाज में हम अपनी मर्जी से खाते भी नहीं हैं, हमें तो हमारा बाजार हमें सिखाता है कि हमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं।

आदिवासी इंसान भोला-भाला होता है वो दुनियादारी की चालों को नहीं समझता वो अन्य लोगों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता है हालांकि ज्यादा भोलापन भी ठीक नहीं होता है लेकिन अच्छा इंसान बनने के लिए भोलापन होना जरूरी है। शासन की बात करें तो आदिवासी सामाज के अपने शासन-प्रशासन के जो भी ढांचे रहे हों फिर भी वो स्व-शासन के आधार पर जीते हैं जहां हमारा समाज कभी पहुंच ही नहीं पाता है।

उनकी ज्ञान की अद्भुत पद्धति है, वो जीवन के भिन्न आयामों के बीच में अपने अद्भुत ज्ञान का सटीक प्रयोग करते हैं जिसे बचाये रखना मुश्किल हो गया है। वो अपने आत्म सम्मान को बचाने के लिए संघर्ष की भावना रखते हैं और उसके लिए मर मिटने को तैयार रहते हैं। बिरसा मुंडा या नर्मदा आंदोलन आदि किसी भी समय में हुए कोई भी अन्य

माओवादियों के आंदोलन रहे हों वो केवल अपने आत्म-सम्मान को बचाने के लिए हुए हैं। ये कहा जा सकता है कि स्वाभाविक प्रतिक्रिया के तौर पर हारने के बाद वो माओवादियों के पक्ष में जा सकते हैं लेकिन वास्तव में वो अपने आत्म-सम्मान को बचाने के पक्षधर हैं और अन्याय के खिलाफ मर मिटने को भी तैयार दिखते हैं। वहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बीच बहुत सी चीजों में फर्क है लेकिन आदिवासी समाज ने कभी भी गुलामी बर्दाशत नहीं की इसलिए वो विद्रोह करते रहे हैं।

आदिवासी लोग बाजारवाद, पूंजीवाद के विरुद्ध रहते हैं। वो निजी की अपेक्षा सामूहिक संपत्ति की अवधारणा पर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार मुझे लगता है कि यदि हम आदिवासियों की इन सभी अच्छी बातों को ग्रहण करें तो हमारा समाज बहुत हद तक सकारात्मक रूप से बदल सकता है।

अमरेश राय – आज की स्थिति को देखें तो आदिवासियों ने महत्वपूर्ण संघर्ष किये हैं। नव-उदारवाद में किसानों आदि कई अन्य लोगों ने भी संघर्ष किये जिसमें कई किसान मारे भी गए हैं। आदिवासी नए तरह से वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य खड़े कर रहे हैं जिसे अन्य लोगों के साथ मिलाया न जाए। आदिवासी अपने इलाके की सभी तरह की प्राकृतिक संपत्ति के मालिक हैं, उसमें खनिज संपदा आदि भी शामिल है लेकिन फिर भी वही आदिवासी कुपोषित हैं, गरीब हैं, स्वास्थ्य सुविधाओं से बहुत दूर हैं। हमने आदिवासियों की मदद के लिए, उन्हें सुविधाएं देने के लिए वनाधिकार कानून की वकालत की लेकिन उसे नकार दिया गया।

सुभ्रांषु चौधरी – मैं मध्य प्रदेश में आदिवासियों के बीच पलकर बड़ा हुआ लेकिन आज हम कॉलोनिस्ट हैं और कॉलोनी में रहते हैं। एक पत्रकार के रूप में भी मेरा आदिवासियों से लगातार आमना-सामना होता रहा और उनके बारे में मेरी जो समझ बनी वो ये भी है कि इस देश में आदिवासी होने का अर्थ पिछड़ा होने से भी अधिक पिछड़ा होना है। के.पी. एस. गिल

ने एक जगह पर लिखा था कि 'हम सभी कभी न कभी आदिवासी होते हैं'। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि आदिवासियत का अर्थ पिछड़ापन नहीं है। आदिवासी समाज एक सामूहिक समाज है उनके लिए समुदाय ज्यादा प्रमुख है परिवार नहीं। जबकि हम लोग सहकारी से कारपोरेट की ओर बढ़े हैं हमारे लिए समुदाय से ज्यादा खुद हम ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

मैंने कुछ समय माओवादियों के साथ भी बिताया और उनके साथ रहकर ये समझ बनी कि आदिवासी समाज दो वर्गों 'उपरेला और निचला' में बंटा है। हम लोग या पत्रकार आदि लोग जब आदिवासियों को समझने जाते हैं उनसे संपर्क करते हैं तो वो केवल 'उपरेले वर्ग' से ही संपर्क कर पाते हैं। यदि हम वहां जाते हैं तो उसी से बात करते हैं जिसे हिन्दी आती है और वो वहां की क्रीमी लेयर ही होती है जिसे हिन्दी आती है तो हम उन्हीं लोगों के संपर्क में आते हैं और उनकी बात ही जान-समझ सकते हैं। आरआरएस ने बड़ा प्रयास किया उनके कई लोगों ने वहां जाकर आदिवासियों की भाषा सीख ली है। लेकिन हममें से जो लोग उनकी भाषा नहीं जानते वो जब वहां जाते हैं तो वो हिन्दी जानने वाले अर्थात् 'ऊपरेले वर्ग' से ही बात करते हैं जबकि 'उपरेले और निचले वर्ग' के आदिवासी की समझ अलग-अलग है। अब ये हमें तय करना है कि हम किस आदिवासी से सीखना चाहते हैं सलवा जडूम से जो पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बन गया या असली आदिवासी से।

मैंने एक पत्रकार के रूप में उनके बीच जाकर बहुत कुछ देखा और सीखा। उसमें सबसे पहली बात ये है कि बस्तर का 40 प्रतिशत इलाका माओवादियों के कब्जे में है और 40 प्रतिशत सरकार के कब्जे में, बाकी के 20 प्रतिशत का कब्जा बदलता रहता है। जब मैंने उन्हें समझा तो उन्होंने बताया कि आप लोग हमारे बारे में जो समझ रखते हैं वो बेकार की समझ है। आदिवासियों ने खुद हमें ये समझाया कि हमारा अर्थात् आधुनिक संचार तंत्र लोकतांत्रिक नहीं राजतांत्रिक या धनतांत्रिक और व्यक्तिवादी हो गया है। ये संचार माध्यम कुलीन वर्ग के अधीन है, उसका मालिकाना हक छोटे से लोगों के हाथ में भी आ सकता है और वो अपनी समझ या अपने लाभ के लिए उसका जैसे चाहें वैसा प्रयोग कर सकते हैं। जबकि उनका माध्यम हमारी तरह मशीन पर आधारित नहीं है बल्कि उनका माध्यम 'हवा' है जो कि एक लोकतांत्रिक संचार माध्यम है, जिसमें सभी लोग भाग ले सकते हैं। उन्होंने हमें समझाया कि

यदि हम अपने संवाद को असरदार और किसी समस्या को सुलझाने के लिए प्रयोग करना चाहते हैं तो अपने संवाद को लोकतांत्रिक करो, ताकि वो आखरी आदमी तक पहुंच सके।

इस सब से मैंने सीखा कि इस देश के गरीब एवं आदिवासी की अपनी समझ है वो अपने तरीके से संवाद कर सकते हैं लेकिन हमने उसे जकड़ रखा है। और यदि हम लोग अपना एक बेहतर भविष्य चाहते हैं तो हमें अपने संवाद को लोकतांत्रिक बनाना होगा जो आखरी आदमी तक भी पहुंच सके, इससे हमारी निर्णय प्रक्रिया और भी अधिक बेहतर होगी।

नरेन्द्र — ये कौन निर्धारित करता है कि आदिवासी कौन हैं? आखिर आदिवासियत शब्द किस परिभाषा से निकला है ये तय नहीं है क्योंकि यदि हम आधुनिक लोग देवी की पूजा करें तो हम 'हिन्दू' कहलाते हैं, चर्च में जाएं तो 'ईसाई' लेकिन आदिवासी लोग तो जातीय मापदंड को मानते ही नहीं हैं लेकिन फिर भी हमने उसे एक सांचे में रख दिया है वो है 'आदिवासी'। हमने उसे संविधान में फिट करना था इसलिए हमने उसका एक वर्ग बना दिया। लेकिन वो कहता है कि उसका आदिवासी वाला कोई धर्म नहीं है। तो वो मापदंड क्या है जो उसे आदिवासी बनाता है वो कहां से आता है उसे कौन तय करता है उसे समझना कठिन है। पुरानी पीढ़ी के आदिवासी कहते हैं कि जिसे 'वन' से प्यार हो वही आदिवासी है। अगर जातियता की बात की जाए तो जब बस्तर में जातियता से परिचय कराने की बात की गई तो बहुत ही जटिल जाले से बने दिखाई दिए। हुआ ये कि कुछ लोग वहां 100 साल यो उससे पहले से बढई, लौहार, व्यापारी आदि का काम करने वहां आए और वहां आकर उन्होंने वहां के आदिवासी से रहने के लिए जगह मांगी और उसे दे दी गई। बाहर से आए लोग भी आदिवासियों के साथ मिलकर रहने लगे और उनके तरीकों में आपसी रूप से घोलमेल हो गया और बाहर से आने वाला आदिवासी भी वहां पहले से रहने वाले आदिवासी की तरह रहता है, उसी की भाषा बोलता है और उसी की तरह जीता है और उसमें और पुराने आदिवासी में फर्क करना लगभग असंभव सा है। मैं खुद काफी सालों से उनके बीच में रहा

और मुझे खुद 10-12 साल बाद पता चला कि अमुख जातिगत रूप से मूल आदिवासी नहीं है।

आज उसी आदिवासी और गैर आदिवासी के बीच बहस एवं चर्चा चल रही है। अमीर आदिवासी, गरीब आदिवासी को वनाधिकार कानून के तहत जमीन नहीं दिलवाना चाहता है। साधन संपन्न आदिवासी और साधनहीन आदिवासी के बीच लड़ाई चल रही है और उसे लड़ाई के तहत 'बोकारा नाला नरहरा' के बीच कई गांव जला दिए गए हैं। आदिवासियों के लिए ही वनाधिकार कानून बना है लेकिन उससे लाभ होता दिख नहीं रहा है।

अब जहां तक उन लोगों से सीखने की बात है तो सरकार, माओवादी, निगमित घराने और समाजवादी आदि आखिर आदिवासियों के बीच क्या सीखने जाना चाहते हैं ? अबू जमाड़ 4000 किलोमीटर तक फैला है अब हम अबू जमाड़िया से क्या सीखेंगे क्योंकि मैं तो टुकड़ों में सीखता हूं और वो पांचवी कक्षा से आगे भी नहीं पढ़ेंगे। उनकी शब्दावली असीमित है, उनके पास कोई अजीबिका नहीं है, वो चूहा भी खाता है, खेती भी नहीं करता, उसके पास उद्योग-धंधे भी नहीं हैं, आदिवासी कहता है कि उसका घर एक झोपड़ी में नहीं है या केवल एक झोपड़ी तक सीमित नहीं है वो तो कहता है कि उसका घर तो झोपड़ी से बाहर है तो अब सवाल ये उठता है कि आधुनिक कही जाने वाली तकनीक तो अभिमानी है ऐसे में वो एक आदिवासी से क्या सीखेंगे ये भी एक मुद्दा है।

पिछले दिनों अबू जमाड़िया में माओवादियों ने जितना नुकसान किया है उतना नुकसान 60-65 सालों में पूरे भारत में भी नहीं हुआ है। उसका दमन इतना भयानक रूप से हुआ है कि वो किसी भारतीय राज्य में नहीं हुआ। माओवादियों ने उनके अंदर के इलाकों को भी प्रभावित कर दिया। आज अबू जमाड़िया की ऐसी बुरी स्थिति हो गई है कि आज वो अपनी दुनिया को छोड़कर बाहर आ रहा है। मैं उस इलाके से बाहर निकले एक परिवार जिसमें पति-पत्नी और उनके दो बच्चे शामिल हैं उनसे मिला। उन्होंने कहा कि उनके आदिवासी इलाके से बाहर आने का कारण प्रताड़ना है, वहां माओवादी कभी भी उनको गोली मार सकते हैं इसलिए अपनी और अपने परिवार की जान बचाने के लिए उन्हें 2005 में उस इलाके से

बाहर आना पड़ा। इनके पास किसी भी तरह की कार्य कुशलता नहीं है कि ये वो काम करके अपनी जीविका चला पाएं। हमारे उद्योग, व्यापार और आजीविका उसके काम की चीज नहीं हैं इसलिए उनकी स्थिति बहुत भयानक हो गई। अब पहली बार उनके सामने अजीविका का सवाल पैदा हुआ। कुछ समय तक उन्होंने जैसे-तैसे अपने बच्चों को पाला लेकिन न तो हमारा समाज और न ही हमारा कोई काम-धंधा उनकी समझ में आया तो उनके भूखों मरने की नौबत आ गई और आखिर में मजबूर होकर उसकी पत्नी ने खुद की देह का व्यापार करना ही शुरू कर दिया। तो ये केवल कोई अकेला उदाहरण नहीं है बल्कि इस तरह के कई अन्य उदाहरण आज हमारे सामने मौजूद हैं जहां आदिवासी या तो अपने जीवन और उसकी विकट होती परिस्थितियों से हारकर इसी तरह के किसी काम को करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

जब तक आदिवासी इलाकों में भारतीय राज्य का नियंत्रण था तब तक ऐसी स्थिति नहीं थी लेकिन आज हालात बदतर होते जा रहे हैं। एक ओर तो हम देखते हैं कि राज्य पद्धति दमनकारी है और दूसरी ओर वही आधुनिकता की बात करते हैं।

हम ये सोचें कि आदिवासियों की अपने बारे में क्या नीति है। उसकी नीति उसके अपने गांव अर्थात् तीन घरों से होती है। एक आदिवासी सुबह अपने काम या भोजन आदि के लिए अपने घर से उतनी ही दूरी तय करता है ताकि वो शाम तक अपने घर वापिस आ जाए, तो हमारे लिए उसकी इस बात की क्या सार्थकता है ये खुद हमें ही तय करना है। उसी तरह से हमें आदिवासी के विरोध जताने के तरीके को भी समझना होगा। लेकिन मुझे लगता है कि यदि हम उसके भीतर की दुनिया में जा रहे हैं तो हमारे साथ हमारी कई बुरी आदतें या चीजें भी उसके साथ उसके इलाके में प्रवेश करती हैं जिससे वो और उसका तंत्र बर्बाद भी हो सकता है तो इस बात को भी ध्यान में रखने की जरूरत है।

श्रीधर – 6 दिसम्बर को सुप्रीम कोर्ट में नियमगिरी के पहाड़ और वनाधिकार के संबंध में एक मुद्दा आया। न्यायाधीश अफता का कहना था कि राज्यों द्वारा दिया गया वनाधिकार पट्टा ही गलत है।

2-3 साल पहले आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के युवाओं ने हमसे सवाल पूछा कि हमारे इलाके में नदियां हैं और हम अपने कई कामों के लिए इन नदियों का पानी लेते हैं। लेकिन राज्य या केन्द्र को इससे क्या परेशानी है, भला उसे हमारे पानी से क्या लेना-देना ? उनका सवाल था कि सरकार आदिवासी और उनके इलाके को जिस शासन व्यवस्था में ले गए हैं उसकी तो उन्हें जरूरत ही नहीं थी।

हमने कहा कि पिछले 100 साल में सरकार, बाजार और समुदाय का विश्लेषण किया तो देखा कि 100 साल पहले वहां एक ही समुदाय था, उसकी प्रवृत्तियां एक ही जैसी थी। वहां सरकार, समुदाय और बाजार एकीकृत था। यदि वहां कोई सुअर को मारकर उसे खाने के लिए लाया हो तो वो भी सभी में बराबर बंटता था। लेकिन धीरे-धीरे उसके समुदाय में बाहर के कई लोगों के जैसे कोई कांग्रेस का आदमी है तो कोई पादरी है तो कोई समाजसेवी है आदि के घुसने से उसका समुदाय कई आयामों में विभाजित हो गया। वहां पहले एक ही समुदाय होता था जिसमें 80 परिवार होते थे और 100 साल बाद वही 80 परिवार 125-126 परिवार हो जाया करते थे। लेकिन आज वहां 3 राजनैतिक पार्टियां हैं, कुछ लोग हैं जिनका कोई धर्म है और कुछ अन्य हैं जिनका कोई भी धर्म नहीं है। आज वो 126 परिवार 40 से अधिक गुटों में बंट गए हैं। आज वहां पानी, राजस्व आदि कुल 26 सरकारों का हस्तक्षेप है। उन लोगों को लगता है कि उनके क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के बाद उनकी स्थिति बिगड़ी है, उन्हें लगता है कि सरकार उनको विभाजित करने और उनका दुरुपयोग करने का काम कर रही है।

वास्तव में हम पूंजीवादी, साम्यवादी हैं और वो ये गुण इतने शक्तिशाली हैं कि वो लोकतंत्र को कायम नहीं होने दे रहा है। उनके दृष्टिकोण से ये लगता है कि वो हमारे लिए संपदा हैं। हमारे लिये यूरेनियम आवश्यक है जबकि उनके लिए जमीन के नीचे दबे यूरेनियम

के अलावा जमीन के ऊपर लगा पेड़ उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। हम ये भूल गए हैं कि कोई भी आदिवासी दल अपने समाज को कैसे चलाता है उसकी प्रक्रिया को हम भूल गए हैं। जिसे याद दिलाने की जरूरत है। उनका तंत्र सरल है जबकि हमारा निगमित है। आदिवासियों का ज्ञान अधिग्रहण का तरीका हमसे अलग है जिसकी रक्षा उसे समझने के बाद ही की जा सकती है। डाबर कंपनी ने स्तन कैंसर के इलाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व 'टैक्सोल' को आदिवासी इलाकों से निकाल लिया और और टैक्सोल में मौजूद अन्य महत्वपूर्ण औषधीय गुणों वाले तत्वों को निकाल कर प्रयोग कर लिया है लेकिन उसी इलाके में रहने वाले आदिवासी को कोई लाभ नहीं पहुंचाया है।

सरकारी योजनाएं विभाजित हैं। सरकार की योजनाओं और मशीनकरण को फिर से देखने की जरूरत है। अभी कुछ मुकदमे चल रहे हैं जिन्हें देखना होगा। गोदावरी पर बने बांध के कारण 312 गांव डूब गए जिसमें 274 आदिवासियों के गांव थे और ये बात इस संबंध में निर्णय लेने वाले व्यक्ति या संस्थाओं को समझ में नहीं आई। वेदांता 2006–2013 तक। वेदांत 2013 में कहता है कि सी.जी. को ये बताना होगा कि वो वनाधिकार कानून से क्या समझती है। तो इससे ये सवाल उठता है कि क्या वो 6 साल से उसे समझे बिना ही अमल में ला रही है। आदिवासी समाज को जड़ी-बूटियों और अन्य कई प्राकृतिक चीजों का ज्ञान हमारे यहां के पीएचडी वाले विद्यार्थी से भी ज्यादा है लेकिन हम उसकी कोई कद्र ही नहीं कर रहे हैं। हमें तो उसके ज्ञान, उसकी समझ को दस्तावेज बनाकर संरक्षित करना चाहिए और उसको सम्मानित करना चाहिए।

नंदा देवी के पास भोटिया लोगों ने सरकार द्वारा उनके और उनके इलाके में हो रही तबाही को देखते हुए कहा कि 'सरकार ने अभी तक हमारा जितना विकास किया उसके लिए हम आपके एहसानमंद हैं लेकिन अब उन्हें इस तरह के बर्बाद कर देने वाले विकास की जरूरत नहीं है'। और हमें भी इस बात को समझना चाहिए और अपने और सरकार के कामों से उनके और उनके इलाकों को बर्बाद नहीं करना चाहिए।

दूसरा सत्र

राष्ट्रीय आदिवासी नीति

आर.पी. अग्रवाल — हम आदिवासियों से खेती के बारे में बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनसे जैविक खेती के बारे में सीखा जा सकता है, वो जिस अनाज को उत्पादित करते और खाते हैं उसका पोषण मूल्य ज्यादा होता है। वो बीज बचाते हैं, वो कभी भी अवसाद में नहीं रहते हैं इसलिए उनसे जीवन जीने के तरीखे सीखने और अम्ल में लाने की जरूरत है।

विनसेन्ट एका — मैं मूलतः छत्तीसगढ़, जसपूर जिले से आता हूं। आज मैं आपके सामने आदिवासी नीति के बारे में अपने विचार रखना चाहूंगा। मैं जेएनयू से सोशियोलॉजी में पीएचडी कर रहा हूं। मैंने इस बात का अध्ययन किया कि आदिवासी किसे विकास मानता और समझता है। मैंने राष्ट्रीय आदिवासी नीति का अध्ययन किया और पता चला कि उसमें बहुत सी खामियां हैं। और इन खामियों को कई संस्थाओं ने इंगित किया और बाद में इसे सामूहिक रूप से मिलाकर नई नीति बननी चाहिए लेकिन वो नहीं बनी।

राष्ट्रीय आदिवासी नीति को संपूर्ण रूप से देखें तो वो कुछ विशेषज्ञों, नौकरशाहों के द्वारा बनाई गई है इसलिए उसमें आदिवासी शैली और उसे देखने के तरीके पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस नीति में 'हम' और 'तुम' का आभाव है। जो कि पूरी तरह से गलत अवधारणा है। इस नीति को बनाने से पहले आदिवासी नजरिये को देखने और समझने की जरूरत है। कि क्या आदिवासी समाज इस तरह की नीति चाहता है? इस नीति को कौन बनाये? और इस नीति में कौन-कौन शामिल हों? इन बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

2008 में ही इस नीति को राष्ट्रीय संसद में रखा गया लेकिन आज तक कुछ भी ठोस नहीं हो पाया। इसमें राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी है। इसलिए आजकल ऐसी कोई नीति नहीं बन पा रही है जिसे इसमें शामिल किया जाए। इस संबंध में 19 पेज में राष्ट्रीय और

अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी नजरिए से बहुत सारे सुझाव आये लेकिन वो सभी बातें एवं बिंदुओं को इसमें शामिल नहीं किया गया।

राष्ट्रीय नीति को देखें तो उसका यही उद्देश्य दिखाई देता है कि उसमें आदिवासी समाज को खत्म सा करने की कोशिश की गई है। हम उस समाज को उसके अस्तित्व को किसी दूसरे समाज में मिलाना चाहते हैं। इसमें उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को सुधारने की बात की गई है जिससे ऐसा लगता है कि हम उनपर अपनी समझदारी को थोपने की कोशिश करते हैं। हम आदिवासी इलाकों में ढांचागत विकास की बात करते हैं और उन इलाकों में ऐसा हो भी रहा है लेकिन आदिवासी इस तरह का विकास नहीं चाहते हैं। हम चाहते हैं कि आदिवासियों के लिए किये जाने वाला कोई भी विकास तभी प्रभावी होगा जब उसमें आध्यात्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को भी शामिल किया जाए। किसी भी समाज के लिए कोई भी नीति बनाने से पहले उसे उस समाज की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। उनकी भागीदारी के बिना किसी भी पॉलिसी को बनाकर समाज में थोपने से कुछ सफल नहीं हो सकेगा। एक ओर तो सरकार आदिवासियों के लिए बहुत से कामों को करने का दावा करती है लेकिन उनकी जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं होती। मेरा सुझाव है कि राष्ट्रीय नीति के ड्राफ्ट में आदिवासी तरीके से देखा जाए तो जो भी नीतियां बन रही हैं वो भी इसमें शामिल की जाएं।

अमित – मैं 25-30 साल से पश्चिमी अलीराजपुरा के बड़वानी जिले में रह रहा हूं, मैंने आदिवासियों के साथ बहुत सा समय बिताया। इसलिए मैं उनके बारे में थोड़ा बहुत जानता हूं। आदिवासी हमारी तरह 4 वर्णों में विभाजित नहीं हैं लेकिन फिर भी वो अपने सम्मान की लड़ाई लड़ रहे हैं। मैंने भी जब उनके साथ काम किया और पिछले 15 साल से उनकी मानसिकता को समाज की मुख्य धारा से मिलाने का प्रयास किया, जिससे मुझे लगा कि उसके लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण हथियार साबित हो सकती है।

यदि हम उनसे सीखना या उन्हें सिखाने की बात सोचते हैं तो सबसे पहले हमें इस मानसिकता को छोड़ देना होगा कि हम उन्हें कुछ सिखा सकते हैं और यदि हम उनसे कुछ सीखना भी चाहते हैं तो पहले हमें खुद को उनसे सीखने लायक बनाना पड़ेगा।

हमने कई गांव देखे हैं जहां आदिवासी लोग ही सरपंच, प्रधान आदि पदों पर आसीन हैं। आदिवासियों की एक बड़ी बात है कि उनके बीच में जाति का उत्पीड़न नहीं है। आज कुछ आदिवासी ट्रैक्टर आदि से भी काम करने लगे हैं। यदि हम देखें तो हमारी व्यवस्था ही ऐसी बन गई है कि व्यवस्था एवं नियम—कानून बनाने वाले जिस भी तबके या क्षेत्र आदि के लिए नियम कानून बनाते हैं वो उस क्षेत्र के बारे में कोई भी जानकारी नहीं रखते हैं। जैसे यदि आप महिला नीति के संबंध में ही देखें तो उनके लिए नीति बनाने वाली संस्था या कमेटी में अधिकतर पुरुष ही हैं जो महिलाओं की समस्या को तो समझ ही नहीं सकते हैं अब भला वो उनके लिए नीतियां एवं कानून किस तरह के बनाएंगे ये तो अंदाजा लगाया जा सकता है। उसी तरह आदिवासियों के लिए बनी पांचवी अनुसूचि को बनाने वाले गैर आदिवासी हैं जो आदिवासियों और उनकी परिस्थितियों के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं।

यदि हम उनकी ज्ञान पद्धति से अपने समाज को विकसित करने के बारे में सोच रहे हैं तो हमें सबसे पहले भाषा पर ध्यान देने की आवश्यकता है। क्या आप उनको उनकी भाषा में उन्हीं की चीज सिखाना चाहते हो या अपना कुछ सिखाना चाहते हो। और यदि हम उन्हें कुछ सिखाना चाहते हैं तो पहले हमें खुद को भी टटोलना चाहिए कि जिस तरह से धर्म गुरु अपने कर्तव्य के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं तो क्या हम भी उसी प्रतिबद्धता से आदिवासियों को सिखाने के लिए तत्पर हैं।

हम भी कुछ इसी तरह की सोच लेकर आदिवासियों के बीच में गए और हमें महसूस हुआ कि वास्तविक मुक्ति 'शिक्षा' से ही संभव हो सकती है। शिक्षा, आधुनिक दुनिया को चलाने को उसमें खुद को स्थापित करने का एक हथियार है। इसलिए हम अपने एक दल के साथ आदिवासियों को उनके इलाके में ही शिक्षा देने के मकसद से पहुंचे। हम उन्हें अंग्रेजी, नीति, गणित, आदि सिखाना चाहते थे ताकि वो सरकारी नीतियों को समझ सकें।

जब हमने उन्हें इतिहास पढ़ाने की कोशिश की जो हमने उन्हें अपना ही इतिहास अर्थात् रानी झांसी, महाराणा प्रताप आदि के बारे में बताना शुरू किया। उसे पढ़कर उन्हें ऐसा लगता था कि हम आदिवासी तो कुछ हैं ही नहीं। समाज, देश एवं इतिहास में हमारा तो कोई स्थान ही नहीं रहा। उन्हें ऐसा लगा कि उनके पुरखों ने तो जैसे कोई भी महान काम किया ही नहीं। जबकि वास्तव में आदिवासियों के भी कई महान लोग थे जैसे नायक, भीमा, मेहा नायक आदि। यदि हम लोग ध्यान से देखें तो 1857 का एक बड़ा विद्रोह हुआ और कई लोग मारु अर्थात् भारत के केन्द्र में बसे थे तो यदि हम देखें तो उस समय एक बड़ी संख्या में कई लोग वहां रहे होंगे तो उनके खाने-पीने और रहने को प्रबंध कहां से होता होगा और उनके होने से आस-पास के इलाके तो प्रभावित हुए ही होंगे। तो इससे स्पष्ट है कि उनके खाने-पीने की प्रबंध वहीं के आदिवासी गांवों से हुआ होगा और उन्होंने आदिवासी गांवों को ही प्रभावित किया होगा लेकिन इसके बारे में हमारी इतिहास की पुस्तकों में कहीं कुछ नहीं मिलता। उसी तरह से यदि आप महाराणा प्रताप की फोटो देखें तो उनके साथ एक भील भी दिखाई देता है जिसको 'पूजा' के नाम से जाना जाता है। तो उस आदिवासी पूजा भील ने महाराणा प्रताप का हमेशा साथ दिया और उसके साथ हर काम में उनकी मदद की लेकिन हमारे इतिहास में उसके बारे में भी कहीं कुछ नहीं है।

इस प्रकार हमें लगने लगा कि आदिवासियों को सिखाने या पढ़ाने के लिए नई अध्ययन सामग्री विकसित किये जाने की आवश्यकता है। उनके लिए बने पाठ्यचर्चा को इस तरह से बनाना चाहिए कि एक आदिवासी या दलित की नजर से दुनिया किस तरह से दिखती है या उसकी नजर से किसी विशेष वस्तु या स्थान को किस तरह से समझा जाये आदि।

उनका समाज हमारी अपेक्षा कई क्षेत्रों में उन्नत दिशा में दिखाई देता है इसकी समझ मुझे उनके साथ रहने से हुई। हुआ ये कि हम लोग 1982 से झाबुआ के साथ रह रहे थे और हमने देखा कि एक झाबुआ की 18 वर्ष की बहन रात को घर ही नहीं आई और वो लगातार तीन दिन तक घर नहीं आई लेकिन उसके घर में उस संबंध में किसी भी तरह की चिंता या परेशानी नहीं दिखती थी जबकि यदि हमारी कोई जवान बहन एक रात भी घर न आए तो

हम परेशान हो जाते हैं। जब मैंने उनसे इस बारे में सवाल किया तो उन्होंने जवाब दिया कि 'अब उनकी बहन जवान है और वो अपनी मर्जी से अपना जीवन जी सकती है वो अपने या अपने भविष्य के बारे में कोई भी फैसला लेने के स्वतंत्र है'। जिसे सुनकर मैं बहुत हैरान हुआ। इसके अलावा उनके समाज में दहेज आदि का कोई विचार नहीं है बल्कि उल्टा ऐसा है कि किसी लड़की का विवाह होगा तो लड़के वाले ही लड़की के परिवार को पैसा आदि देंगे। तो इस तरह की कई अन्य बातों को देखकर अच्छा लगा कि वो कितने उन्नत हैं या किसी-किसी विषय में उनकी समझ हमसे कई गुणा आगे है।

सरकार द्वारा आदिवासियों के लिए बनी नीतियों में कहा गया है कि 12 वीं पास आदिवासी को या 10 वीं पास आदिवासी को ही नौकरियों में आरक्षण दिया जायेगा लेकिन वहीं दूसरी ओर सरकार ये प्रयास करती है कि आदिवासियों के बच्चों को 12 कक्षा तक पहुंचने ही नहीं दिया जाता, या तो उन्हें बीच में ही फेल कर दिया जाता है या कुछ और। ऐसा इसलिए होता है ताकि कहीं वो पढ़लिखकर आरक्षण न मांगने लग जाएं। इस प्रकार बहुत अधिक मेहनती या कुशाग्र बुद्धि वाले बच्चे ही आगे पढ़ पाते हैं बाकी वहीं रह जाते हैं।

भूमि हस्तांतरण के संबंध में बहुत से सवाल हैं तो क्या हम उन सवालों का सामना करने और उनका समाधान तलाशने को तैयार हैं? मुझे लगता है कि यदि हम इस विचार-विमर्श को आगे और आदिवासी अंचल तक ले जा सकें तो बहुत कुछ महत्वपूर्ण काम किया जा सकता है।

आसित – जब हम आदिवासी इलाकों की बात करते हैं तो हम रुमानी हो जाते हैं। नारायण ने पटना में आदिवासियों को शराब पिला-पिलाकर उनकी जमीन को अपने कब्जे में ले लिया। लेकिन जब आदिवासियों ने अपनी जमीन वापिस मांगी तो उन्हें माओवादी कह दिया गया। वो लोग आदिवासी राजनीति को भी निचले स्तर पर रखते हैं जबकि उसे शीर्ष पर रखना चाहिए। 'पेसा' कानून के संबंध में नये सुधार तो किये गए हैं लेकिन आप उन पर न्यायतंत्र

पर टिप्पणी नहीं कर सकते हैं। यदि हम आदिवासी राज्यों की स्वयतता को देखें तो ठीक दिखाई देती है।

के. के. नियोगी – आज की आदिवासी समस्या ओद्योगिक मानवीकरण की शिकार है। आदिवासी संघर्ष शासक वर्ग के खिलाफ है। हमें बाकी संघर्षों के साथ मिलकर चलना होगा।

विजय प्रताप – एक ओर तो हम ये कहते हैं कि हम आदिवासी समाज की संस्कृति, उसके ज्ञान को कैसे समझें और दूसरी हम अपनी बात को इस ओर भी ले जाते हैं कि हम उन्हें क्या सिखाएं जबकि दोनों अलग बातें हैं। उसके लिए एक अलग सत्र हो सकता है। कुछ वक्ताओं के अनुसार हम उन्हें सिखाने की स्थिति में नहीं हैं तो भला हम उन्हें कैसे सिखा सकते हैं।

अशोक कुमार सिंह – मैं झारखंड से आता हूं। मेरे पिताजी आदिवासियों के बीच में रहे वो वकील थे। संथाल परगना के लिए अस्थायी अधिनियम है। संथाल परगना में महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार नहीं है। हमें इस बात पर गौर करना चाहिए कि झारखंड तथा अन्य आदिवासी क्षेत्रों में आज भी क्या हो रहा है। मुझे लगता है कि आदिवासी खुद पहले से ही मुख्य धारा में हैं। हम और आप लोग मुख्य धारा के नाम पर उनको लूट रहे हैं।

विनीत – मैं आदिवासी इलाके से ही हूं, इसलिए मैं ये बताना चाहता हूं कि संपत्ति पर अधिकार के संबंध में आदिवासियों की अपनी ही एक समझ है। उनके लिए जमीन एक वस्तु नहीं बल्कि जमीन ही उनकी संपत्ति और सबकुछ है। वो जमीन को केवल एक आदमी की नहीं बल्कि पूरे समुदाय की समझते हैं, उसे न तो बेचा जा सकता है और न ही उसका किसी अन्य तरह का व्यापार ही किया जा सकता है। आदिवासी लोग अपनी जमीन पर महिलाओं

को अधिकार इसलिए नहीं देते क्योंकि उन्हें लगता है कि जब किसी भी महिला की शादी होगी तो उसके पति एवं ससुराल की जमीन-जायदाद पर उसका भी अधिकार अपने-आप ही कायम हो जाता है। आदिवासी समाज में जमीन के कारण महिलाओं को द्वितीय दर्जे की अहमियत दी जाती हो ऐसा नहीं है।

बी. के. मनीष – मनीष जी ने आदिवासियों के लिए विधिक और वैधानिक तरीके से बहस की और उनके अनुसार राष्ट्रीय आदिवासी नीति में बहुत सी बातें शामिल की जानी चाहिए। भारत की कोई आदिवासी नीति नहीं है, राष्ट्रीय आदिवासी नीति के दो-तीन ड्राफ्ट बन चुके हैं। 2004, 2006 तथा 2008 में उसे केन्द्रीय मंत्रिमंडल में रखा गया और वहां से मंत्री के पास भेजा गया लेकिन 2008 के बाद इस संबंध में कुछ हुआ हो ऐसा सुनने में नहीं आया। राष्ट्रीय आदिवासी नीति के संबंध में हमें बहुत छोटे अणु से शुरू करने की जरूरत है। यदि हम संवैधानिक या विधिक नीति की बात करें तो भारत में आदिवासियों को लेकर संवैधानिक और विधिक ढांचे की कहानी एक आम आदमी की कहानी की तरह है। वो न्यायालय, प्रैस, नौकरशाही आदि से एक आम आदमी की सोच के बारे में सोचता हुआ सा दिखता ही नहीं है। वो केवल अपने दिमाग एवं अपनी समझ के आधार पर काम करता दिखाई देता है आदिवासी की जरूरत के आधार पर नहीं।

हमारा परिवार उत्तर प्रदेश से मध्य प्रदेश के सरगुजा जिले में आकर बस गया। मैं आदिवासियों के स्कूलों में ही पढ़ा हूँ इसलिए उन्हें नजदीक से देख-समझ पाया। मैंने वहां से पढ़कर मुम्बई आदि कई शहरों में नौकरी की और वापिस छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके में काम करने का मन बनाया।

छत्तीसगढ़ आकर आदिवासियों की स्थिति और उनके लिए बने कानूनों को पढ़ा समझा। मैंने आदिवासियों के लिए बनी पांचवी अनुसूची को जाना। जनजाति सलाहकार परिषद के काम करने के तरीके को देखा। देखा कि कई मामलों में ऐसा कुछ नहीं जहां स्पष्ट रूप से उल्लंघन हो रहा हो। अनुच्छेद 3-4 के अनुसार राज्यपाल के पास शक्तियां हैं उनके

बारे में सलाहकार परिषद में सलाह दिये जाने का प्रावधान है लेकिन वहां 'सलाह' के ही अलावा बाकी सबकुछ मिलता है। सभी विभागों के संबंध में निर्णय वहीं पर लिये जाते हैं। जनजातीय सलाहकार परिषद (टीएसी) के अलग-अलग राज्यों में संवैधानिक निकाय हैं। कुल मिलाकर देश के 12 राज्यों में जनजातीय सलाहकार परिषद है। लेकिन फिर भी यदि कोई उनसे कुछ पूछना या सलाह लेना चाहे तो उसे वो नहीं मिलती।

हमने इस बात पर भी बात की कि आखिर आदिवासियों के लिए बनी पांचवी अनुसूची लागू क्यों नहीं की जाती तो पता चला कि उन राज्यों के राज्यपाल खुद आगे बढ़कर कोई पहल ही नहीं करना चाहते हैं लेकिन ध्यान से समझा तो पाया कि ये पूरा का पूरा तर्क ही गलत है। पांचवी अनुसूची के अनुसार राज्यपाल के पास अधिकार हैं लेकिन वो उनका प्रयोग ही नहीं करते हैं। 1949 को संवैधानिक विधानसभा में इस विषय पर चर्चा भी हुई। के.एम. मुनशी ने कहा कि सारे के सारे संशोधन नकारात्मक हो गए पर जयपाल सिंह ने इस ड्राफ्ट को वापिस ले लिया। सबसे पहला ड्राफ्ट 2004 में रखा गया उसके बाद यह ड्राफ्ट कई बार केन्द्रीय मंत्रिमंडल में रखा गया लेकिन हर बार इसका वही हाल होता है। राष्ट्रीय आदिवासी नीति वैसी ही है जैसे कि अन्य नीतियां होती हैं और इसमें लक्षित हस्तक्षेप बहुत देर से भी आया।

राष्ट्रीय आदिवासी नीति पर बात करने की जरूरत हमें तब महसूस होगी जब हम इसे एक शिक्षा ग्रहण करने वाले की तरह से पढ़ें, समझें और इसमें जिस भी तरह के परिवर्तन लाना चाहिए और उस संबंध में जो कानून लाये जाने चाहिए जिससे ये आदिवासियों के पक्ष में पूरी तरह से ठीक हो जाए उन्हें शामिल करने की बात की जाए। क्योंकि जब तक इन्हें ठीक नहीं किया जायेगा तब तक कुछ नहीं हो सकता। 19 नवम्बर को सुभ्रांषु चौधरी की किताब का विमोचन हुआ समर्थक अल्ट्रा समूह ने उनपर हमला किया। हम चाहते हैं कि जब सबकी आलोचना होती है तो विनायक सेन पर भी चर्चा की जानी चाहिए आखिर उनपर चर्चा क्यों नहीं होती है?

यहां मैं एक ओर बात कहना चाहूंगा कि 2010 में गुलाब राय महादती ने 1969–2006 में हुए फैसलों का हवाला देते हुए कहा कि 5 वीं अनुसूची में वर्णित सभी अधिकार विवेकाधिकार हैं। गर्वनर कोई भी निर्णय स्व-विवेक से नहीं ले सकते।

अंबेडकर ने 2 जून 1949 को कहा कि सरकार के पास अधिकार नहीं केवल कर्तव्य हैं। संविधान में कुछ ऐसे भी मौके आएंगे जब मंत्रिमंडल होगा ही नहीं, लेकिन उन्होंने पांचवी अनुसूची के बारे में नहीं कहा। अनुच्छेद पांच में राज्यपाल के पास शक्तिशाली शक्तियां हैं।

1935 में जब भारत सरकार अधिनियम लागू हुआ तो कहा गया कि 'हम चिमटी के सहारे भी इस कानून को नहीं पकड़ेंगे'।

1937 में कांग्रेस की ओर से राजनैतिक-आर्थिक का पर्चा आया इसमें लिखा गया कि 'अंग्रेज हमें बांट देना चाहते हैं, इसलिए इन्होंने इन इलाकों को स्वशासन से अलग रखा'। लेकिन यदि हम किसी चीज को ठीक करना चाहते हैं तो हमें स्थायी तरीकों की ओर लौटना होगा। क्योंकि यदि आदिवासियों की ये जीवन शैली भी विलुप्त हो गई तो वो भी चिंता का एक बड़ा विषय होगा। मुझे लगता है कि राष्ट्रीय आदिवासी नीति पुरानी गलतियों को सुधारने का एक मौका देने का औजार साबित हो सकती है।

मैंने राष्ट्रीय आदिवासी नीति के विजन स्टेटमेंट बनाये जिनके अनुसार –

यदि हम आदिवासियों को एक मानव के मानक (अर्थात मानव की जीवन शैली) के आधार पर देखना चाहते हैं तो हमें पिछले 65 सालों में आदिवासियों के मान-सम्मान और उनके अस्तित्व के अनुभवों का प्रयोग करके 1935 से चली आ रही नीतियों संपूर्ण राष्ट्रवादी हथकड़ी को तोड़ना होगा तभी हम राष्ट्रीय आदिवासी नीति के माध्यम से न्यायसंगत रूप से सही तथा प्रभावी आदिवासी स्वायत्तता को कायम कर सकते हैं।

सरल शब्दों (या यूँ कहें संकरे शब्दों में) में कहें तो इसका अर्थ भारत सरकार द्वारा एक समग्र तंत्र के लिए प्रतिबद्धता है जो कि प्रत्येक आदिवासी को ये स्वतन्त्रता देता है कि एक पारंपरिक मुख्य धारा या संयोजित जीवन शैली से किसी का चुनाव कर सके।

आदिवासियों को स्वायतता दिये जाने से ये सब आसानी से हासिल हो सकता है। हमें शांति को समझने के सभी परिप्रेक्ष्यों को ध्यान से समझने की जरूरत है। इसी तरह से आदिवासी आंदोलनों को भी तेज करना चाहिए आज देश में आदिवासी आंदोलनों की स्थिति दलित एवं महिला आंदोलनों से भी गई गुजरी है।

दिलीप सिंह भूरिया — हमारे देश में 650 जातियों में 10 करोड़ आदिवासी हैं। आदिवासी कुनबों के रूप में रहते हैं। जब संविधान सभा बनी तो ये कहा गया कि जंगलों में रहने वालों को मुख्य धारा में कैसे लाया जाये। उनके लिए नौकरी की व्यवस्था हुई, आरक्षण आदि की बात की गई और उसी क्रम में 1947 में आदिवासियों के लिए पांचवी और छठी अनुसूची भी बनाई गई। लेकिन जब राज्यों का विभाजन हुआ तो आदिवासियों को भी विभाजित किया गया। उत्तर पश्चिम में 7 राज्य बनाए गए। उत्तर पश्चिम का इलाका छठी अनुसूची का है। जो इलाके पांचवी अनुसूची में आते हैं वहां पर किसी को भी घुसने की अनुमति नहीं है। उसी तरह से 'बोडोज' वाला इलाका छठवीं अनुसूची का इलाका है, वहां पर आप आदिवासी जमीन को ले ही नहीं सकते हैं। राज्य को पांचवी और छठवीं अनुसूची का पालन करना चाहिए लेकिन वो होता ही नहीं है। आदिवासियों के पास बहुत संपदा है लेकिन उसके बावजूद भी वो गरीब हैं। आदिवासियों की उद्योगों एवं जमीन पर भागीदारी होनी चाहिए जो कि नहीं है।

पंचायती राज के संबंध में ही देख लीजिए। राजीव गांधी ने खुद कहा कि हम गांवों के लिए 1 रुपया भेजते हैं लेकिन गांवों में केवल 10 पैसे ही पहुंच पाते हैं। पंचायती राज के 73 और 74 संसोधन हुए और उसके आधार पर आदिवासियों को जमीन पर भागीदारी मिलनी चाहिए लेकिन वो मिल ही नहीं रही।

‘पीसा कानून’ आदिवासियों के लिए सुरक्षा कवच है। कहा भी जाता है कि ‘न लोक सभा न राज्य सभा सबसे बड़ी ग्राम सभा’। आदिवासियों के लिए कानून बने हैं। अनुसूचित क्षेत्र के नौकरशाह के पास सब कानून हैं लेकिन वो उसका प्रयोग नहीं करते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि जब तक आप लाभकारियों को जगाओगे नहीं तब तक कुछ नहीं हो सकता है। इन लोगों का शिक्षित होना आवश्यक है, आदिवासियों के लिए नौकरियों में आरक्षण की सुविधा है लेकिन वो केवल उनके लिए ही है जो जो कम से कम 10 वीं या 12 वीं कक्षा तक पढ़ें हैं लेकिन उनमें से अधिकतर विद्यार्थी चौथी कक्षा तक भी मुश्किल से पढ़ पाते हैं इसलिए उनके लिए आरक्षित सीटें यूं ही खाली पड़ी रहती हैं।

1964 में आदिवासियों के लिए ‘डेबरभाई आयोग’ बना, उसके ही चार साल बाद ‘भूरिया आयोग’ बना और उसने स्पष्ट रूप से अपनी रिपोर्ट दी कि क्या-क्या करना चाहिए लेकिन मंत्रिमंडल में इस विषय पर विचार-विमर्श होता ही नहीं है। वहां अभी भी 2 करोड़ लोग पुर्नवास के लिए तड़प रहे हैं। 1913 में अंग्रेजों ने बहुत से आदिवासियों को मारा लेकिन उनके बारे में कोई कुछ नहीं जानता। आदिवासी इलाके को खुला छोड़ दिया गया जिसके कारण माफियाओं ने बड़े भाग में कब्जा कर लिया है। उनकी सांस्कृतिक पद्धति आज भी जिंदा है। पांचवी अनुसूची में जो भी इलाके आते हैं उनमें सपष्ट है कि आदिवासियों की जमीन को कोई भी नहीं ले सकता है लेकिन हमारे मंत्री अधिकारों को देना ही नहीं चाहते हैं। यदि आप आदिवासियों का विकास करना चाहते हैं या उनका भला करना चाहते हैं तो आपको उनको जागृत करना होगा।

यदि आप आदिवासियों से यदि आप कुछ सीखना चाहते हैं तो उनमें बहुत से गुण हैं जिन्हें आप अपना सकते हैं जैसे कि उनकी जीवन पद्धति को सीखो उनके इलाके में अवसाद की बीमारी नहीं होती है, कोई भी आदिवासी लड़की या लड़का आत्महत्या नहीं करता है। किसी आदिवासी लड़की को दहेज के लिए मारा नहीं जाता है। आदिवासी माँ अपने बच्चों को अपना दूध पिलाती हैं, आदिवासी कभी झूठ नहीं बोलता। वो अपने आत्म-सम्मान के लिए अपना सिर भी कटवा सकते हैं।

यदि आप आदिवासियों के संबंध में 16 जुलाई 2004 को जमा की गई दूसरी रिपोर्ट को पढ़ें तो उसमें आदिवासी नीतियां दी गई हैं। उसमें उनकी सभी समस्याओं और उनके समाधान के बारे में लिखा गया है।

आदिवासियों के इलाके से देश के कई इलाकों के लिए बिजली पैदा की जा रही है लेकिन उनकी झोपड़ी में रोशनी तक नहीं है। यदि आदिवासियों के संबंध में बना 'पीसा' कानून ईमानदारी से लागू हो तो आदिवासियों की स्थिति को बहुत हद तक बदला जा सकता है।

पांचवी अनुसूची में सरकार के पास कानून हैं, वो अगर चाहे तो कानून बना सकती है लेकिन बनाया नहीं। यदि आप आदिवासियों के संबंध में किये जा रहे किसी भी काम को गैर राजनैतिक स्तर पर करेंगे तो मुझे उसमें शामिल होने में कोई समस्या नहीं है।

मनीष — पीसा कानून आने के बाद हमारी बहुत सी ऊर्जा यूं ही बर्बाद हुई क्योंकि हमने मूल कारण को ठीक करने की कोशिश ही नहीं की। 3/4 लोग जानते हैं कि पीसा कानून लागू क्यों नहीं होता और पांचवी अनुसूची लागू क्यों नहीं होती। हम आदिवासियों को संगठित नहीं कर सकते और उसकी जरूरत भी नहीं है। वो किसी वैश्विक संधि का हिस्सा नहीं बन रहे और न ही बनना चाहते हैं। ये सोचने की बात है कि उन्हें अपनी ही चीजें बचाने के लिए क्रूर क्यों होना पड़ता है।

के . के. नियोगी — आजादी के बाद भाषा के आधार पर राज्य विभाजन हुआ। उत्तर-पश्चिम में 7 राज्य बने। यहां जितनी भी लूट हो रही है वो निगमित घरानों द्वारा ही की जा रही है।

मनीष — नियोग के इतने आंदोलन के बाद कोई बड़ा नेता नहीं हो पाया।

आसित – कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल आदि के आदिवासी इलाकों में पांचवी अनुसूची है लेकिन जहां आदिवासियों की जनसंख्या 20 प्रतिशत से भी कम है वहां उनके अधिकारों की रक्षा कैसे हो, ये भी एक समस्या है।

मनीष – कुछ लोग सोचते हैं कि पांचवी अनुसूची से भूमि सुधार हुआ है लेकिन ये पूरी तरह से ठीक नहीं है। इसका लाभ छत्तीसगढ़ में नहीं मिल पा रहा है।

नरेन्द्र – ये वाद-विवाद पिछले 65 सालों से चल रहा है और उस जंजाल में हमेशा ये कोशिश की जा रही है कि आदिवासियत का कुछ हो ही न पाए। आदिवासियों के साथ आधुनिकता, वैश्विक दृष्टि, पारिस्थितिकीय रणनीति आदि जुड़े हैं।

विजय प्रताप – क्या आदिवासियों को बचाने के लिए हमें कानूनों की आवश्यकता नहीं है? क्या उन्हें किसी कानूनी ढांचे के बगैर बचाया जा सकता है।

नरेन्द्र – आदिवासियों के जीवित रहने पर ही सवाल खड़ा हो गया है क्योंकि हमने उन्हें राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया है।

भूरिया – आदिवासियों के हित के लिए कानून तो बने हैं लेकिन उनकी अज्ञानता के कारण वो अधिकार उन्हें मिल ही नहीं पा रहे हैं या सरकार या सरकारी कर्मचारी उन्हें लागू ही नहीं कर रहे हैं। इसलिए मुझे लगता है कि आदिवासियों को जागृत किया जाना चाहिए।

विजय प्रताप – हमारी इस बैठक का उद्देश्य आपसी सहमति बनाना नहीं बल्कि एक-दूसरे की बात समझना था। मुझे लगता है कि आधुनिक कानून के बावजूद आदिवासियत बची रह जाए इसके लिए एक मॉडल बनाया जाए तो अच्छा होगा। इसके लिए हम सबको मिलकर काम करना होगा और इस काम में हम एक-दूसरे को विरोधी के रूप में न देखकर हमसफर के रूप में देखें तभी बहुत कुछ सकारात्मक किया जा सकेगा।

बैठक में मौजूद सदस्य –

- **विजय प्रताप** – अवैतनिक रूप में से सेडेड से जुड़े हैं।
- **राजेश उपाध्याय**– नेशनल अलाइंस फॉर सोशल राइट्स में श्रमिकों के अधिकारों के लिए काम करने वाले साझे मंच से जुड़े हैं। दलित संगठनों के साथ भी काम करते हैं।
- **सुभ्रांषु चौधरी** – पत्रकार हैं। छत्तीसगढ़ में कई वर्षों तक रहे। बीबीसी के साथ 20–25 साल तक पत्रकारिता की। पत्रकार के रूप में आदिवासी इलाकों का दौर कर बहुत कुछ सीखा और वहां बहुत से प्रयोग भी किये।
- **राजेन्द्र गुप्ता** – दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और अभी शोध कर रहे हैं। 2 वर्षों से स्वयं को और समाज को समझ रहे हैं। अभी ये फैसला किया है कि किसी के साथ भी नहीं जुड़ना है।
- **अशोक कुमार** – पार्टी और एनजीओ के साथ मिलकर आदिवासियों के लिए संघर्ष किया। आदिवासी इलाकों में रहकर बहुत कुछ सीखने को मिला।
- **वी. कुमार** – सामाजिक, राजनैतिक कार्यकर्ता।
- **विजय लक्ष्मी**– सेडेड में संपादक
- **वीनसेंट एक्का**– जेएनयू से पीएचडी कर रहे हैं।
- **अक्षय गुप्ता**– ग्रीन पीस, सिंगरोली में काम करते हैं।

- **पदम बहादुर थापा**— नेपाली कांग्रेस से जुड़े हैं। नेपाल में लोकतंत्र प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, 4-5 साल तक जेल में रहे और पिछले 10 साल से दिल्ली में रह रहे हैं।
- **दया ललवानी** — सेडेड में अंग्रेजी संपादक
- **छोट्टन दास** — सेडेड में अकाउन्टेन्ट
- **ओवेस सुल्तान खान**— हिन्दू-मुस्लिम रिश्ते में साझेपन को समझने का प्रयास कर रहे हैं।
- **प्रियदर्शिनी विजया**— संस्कृति के विषय में काम करती हैं, आदिवासी समाज के साथ जुड़ी हैं और दलित विषय पर किताब लिखी हैं।
- **प्रदीप बुडेला** — नेपाल से हैं।
- **बीसा कीरत**— आशा में समन्वयकर्ता का काम करते हैं। कृषि के क्षेत्र को उसकी समस्याओं को स्पष्ट रूप से देखना चाहते हैं।
- **मरइनो सेको** — क्रिश्चन ऍड में दलित एवं आदिवासी विषयों के लिए काम करते हैं।
- **अमरीश राय**— वामपंथी आंदोलन से जुड़े रहे। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में काम किया। गुजरात और महाराष्ट्र में वनाधिकार के अलावा सूचना के अधिकार के साथ भी जुड़े हैं
- **आसित** — शोधकर्ता हैं और आदिवासी और किसान संघर्षों पर लिखते आए हैं।
- **त्रिशा**— फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ में काम करती हैं और जल,जंगल, जमीन मुद्दों के अलावा वैश्वकीकरण के विरोध जैसे विषयों पर काम करती हैं।
- **रजनीकांत मुद्गल**— सामाजिक कार्यकर्ता हैं, हिन्दुस्तान टाइम्स में अखबार की ट्रेड यूनियन से जुड़े रहे। पिछले तीन साल से सेडेड के साथ जुड़े हैं।
- **नरेन्द्र**— सेडेड से जुड़ाव काफी पुराना है। काम के तौर पर आदिवासियों से जुड़े हैं। बस्तर में ज्यादा जुड़ाव रहा और अपना लगभग पूरा जीवन बस्तर के आदिवासियों के जीवन और उन्हें समझने में लगा दिया।

- **श्रीधर** – भू वैज्ञानिक हैं। रूड़की से भूविज्ञान पढ़ने के बाद डिपार्टमेंट ऑफ एनटीओलॉजी में रहे। जहां आदिवासियों के साथ काम करने का मौका मिला। उसके बाद ओएनजीसी में रहे। 89 से लोगों के साथ काम कर रहे हैं। मांडूड, मिनिरल, पीपल के संगठन से जुड़े हैं। उन्हें लगता है कि खनन और आदिवासी आपस में जुड़े हैं इसलिए उसे समझा जाना चाहिए। उन्होंने विकास की परिभाषा और यूरेनियम के बारे में जानकारी ली और पता लगाया कि इससे आदिवासियों को नुकसान हो रहा है।
- **के.डी. अधिकारी**
- **बी.के. मनीष** – पांचवीं अनुसूची को देखने और उसे समझने की कोशिश की और अभी भी कर रहे हैं।